RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-08
August-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i08.019

नागार्जुन के साहित्य में जन–चेतना

सिन्धु कुमारी

शोधार्थी, (हिन्दी विभाग) पटना विश्वविधालय, पटना

नागार्जुन के साहित्य में जन–चेतना समाज में जनचेतना की खोज करना आवष्यक है । क्योंकि चेतना एक सतत प्रवाहमान ईकाई है । जो सदैव विकसित होता है, इसलिए आज के दौर में भी नागार्जुन के साहित्य की प्रासंगिकता का पड़ताल करना देषकाल के लिए लाभप्रद सिद्ध होगा । इनके साहित्य में निहित युगबोध एवं इतिहासबोध को समझने के लिए जन–चेतना का मूल्यांकन सही परिपेक्ष्य में किया जायेगा और साथ ही वर्त्तमान समय में नागार्जुन के सहित्य में निहित जनचेतना की उपयोगिता व प्रासंगिकता के संबंध में उन प्रष्नों से रु–ब–रू होगें जो समाज की ज्वलंत समस्याएँ बनकर हमारे बदलते परिवेष और आपसी भाईचारे में खटास पैदा कर रहे हैं ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रगतिवाद या प्रगतिषील धारा एवं स्वाधीन भारत के प्रतिनिधि जनकवित के रूप में बाबा नागार्जुन पहचाने जाते हैं । आज तकनीकी युग में हमने बहूतेरे सुख–सुविधा के लिए साधन अपना लिये, परन्तु मूल्यों का ह्रास हुआ इसका कारण है । जन–जन की संवेदना से कट जाना । अनेक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं अन्य कारणों से तनाव, घुटन, कुंठा, असंतोष आदि फैलने से महानगरीय जीवन और ज्यादा कष्टमय होता जा रहा है । इससे भारतीय समाज विखंडित हुआ है । हमारे जन–मन के चितेरे नागार्जुन समाज का शोषित–दलित वंचित वर्ग के प्रति संवेदना के कारण इनकी रचना में जनचेतना की भावुकतापूर्ण विह्वलता दिखाई पड़ती है साथ ही विषम दषा में जनता के पक्ष में एक तरह मोर्चाबंदी के लिए जागरूक करते हैं । कबीर जैसा सामाजिक, सोद्धेष्य व्यंग्य के तेवर रखने के कारण उन्हें 'आधुनिक कबीर' भी कहा जाता है । उनका सम्पूर्ण साहित्य जिसमें 1971 में दलितों पर हुए शोषण के विरूद्ध 'हरिजन गाथा' नामक लम्बी कविता, 'बलचनमा' सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है । 'वरूण के बेटें' में गरीब मछुआरों का जीवन संघर्ष है । 'जमनिया के बाबा' तथा 'नयी पौध' में जमींदारों द्वारा जनसाधारण गरीबों के शोषण का चित्रण है और गरीबदास में सभी को ऊँच–नीच के भेदभाव मिटाने की बात की गई हैं । 'षासन की बंदूक' कविता में कवि व्यवस्था को चुनौती है । व्यवस्था बंदूक के बल पर जनता पर शासन नहीं कर सकती है । जनता के प्रतिरोध के सामने बंदूक की ताकत नगण्य हो जाती है, जैंसे –

"खड़ी हो गई चाँपकर कंकालों की हुक/नभ में विपुल विराट–सी शासन की बंदूक,
जली ठूँठ परन बैठकर गई कोकिल कूक/ बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक",

यहाँ 'कोकिला' से प्रेम और 'बंदूक' से घृणा के द्वंद्व में ही कविता स्थित है । नागार्जुन की कविताएँ दिखलाती हैं कि संवेदना के अनेक रूप, अनेक स्तर हो सकते हैं । यदि नागार्जुन को बादल प्रिय है तो साधारण जन भी, उनका रोजमर्रा का संघर्ष भी और तेलंगाना तथा नक्सलबाड़ी जैसे बड़े आन्दोलन भी । नागार्जुन की जन–चेतना में जनता की जय में विष्वास ही उनकी कविता में संघर्ष, विद्रोह का विषेष भाव होता है । जो छोटी–से–छोटी लड़ाई में भी बाबा नागार्जुन को बेचैन कर देती है – **'बस सर्विस बंद रही तीन दिन–तीन रात'** से लेकर **'भोजपुर'** तक में देखें जा सकते है ।

अतएव बाबा नागार्जुन एक बहुआयामी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे और उन्होंने अपनी कलम का जादू साहित्य की सभी विधाओं में चलाया है जो जन–चेतना सामाजिक मूल्यों की व्यंजना से पूर्ण है और भारतीय जनता के आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक, सांस्कृतिक, समानता व न्याय के लिए संघर्षरत एवं जिजीविषा का साक्ष्य है । वे ऐसे साधारण जन के लोकप्रिय साहित्यकार थे जो गैर दलित होकर भी दलित शोषित, दुःखी गरीब जनता, आम जन की पीड़ा जिसमें किसान–मजदूर व स्त्री की व्यथा की कथा अपने साहित्य में रचते थे । बाबा नागार्जुन अंधराष्ट्रवाद, नस्लवाद, पाखण्ड व ऊँच–नीच के भेदभाव के प्रबल विरोधी थे ।

उनके साहित्य नाटकीयता में लचीला व्यंग्य है जो सजग और जाग्रत जन–चेतना के साथ तीखा है । उनकी बेहद साहस भरी हँसी जो अभिजात्य व अन्यायी को छेदती व मजाक उड़ाती है । स्वाधीन भारत में प्रगतिवादी हिंदी साहित्य में अपनी एक अलग पहचान रखने वाला कवि व लेखक के रूप में नागार्जुन अपने संघर्षषील आम जन जो शोषित, वंचित है, उनके प्रति संवेदनात्मक सहानुभूति रखते है, प्रगतिषील साहित्य में राजनीतिक पर कटाक्ष बहुत ही साहस के साथ करते है, जिसे हम 'शासन की बन्दूक' कविता में देख चुके है ।

नागार्जुन जन–साधारण के रचनाकार थे, इनकी रचनाओं में लोक संस्कृति, लोक–संवेदना, गाँव–घर,

RRIJM 2015, All Rights Reserved

किसान–मजदूर की भाषा रक्तवाहिनी धमनियों की तरह फैला हुआ है, जो जन चेतना के लिए मुखर हो जाते हैं, कई बार गुस्सा उनके व्यंग्य की जगह ले लेता है । जैसे –

"ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं–
तेरह के तेरह अभागे–
अंकिचत मनुपुत्र
जिन्दा झोंक दिये गये हो ।"

इस तरह नागार्जुन की रचनाओं में कालिदास की करुणा, कबीर का पैना व्यंग्य और निराला का व्यथा–संघर्ष भी है, प्रकृति के साथ श्रम की महत्ता को, ग्रामीण परिवेष में अनुभूतियों के साथ किसान की आत्म–गौरव को वे व्यंजित किया है, जो अपूर्व और अप्रितम है –

"नये गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है,
यह विषाल भूखंड आज तो दमक रहा है ।
मेरी भी आभा है इसमें...
पकी सुनहरी फसलों से जो
अबकी यह खलिहान भर गया
मेरी रग–रग के शोणित की बूँदें इसमें मुसकाती है ।"

यथार्थ में व्यंग्य को इतना धारदार बना देते है कि वह पाठकों को अभिभूत कर देता है और यह व्यंग्य उनके गद्य मे भी अपनी तीव्रता के साथ उभरा हुआ दिखाई पड़ता है, यथा–

"आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी
यही हुई है राय जवाहरलाल की ''।

या

बापू के भी ताउ निकले तीनों बंदर बापू के,
सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनो बंदर बापू के,
सत्य अहिंसा फाँक रहे हैं तीनों बंदर बापू के
दल के ऊपर, दल के नीचे तीनों बंदर बापू के ।"

अथवा

दूसरी तरफ प्राथमिक षिक्षा व्यवस्था की दूर्दषा पर प्रहार, वे इस तरह करते है –

घुन–खाए शहतीरों पर की, बाराखड़ी विधाता बाँचे,
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर विसतुऽया नाचे ।

इस तरह इनकी जन–चेतना की संवेदना बहुत ही सूक्ष्म हैं, एक छोटी–सी 'मंत्र' कविता के 'ऊँ०' में पूरा ब्रह्माण्ड की व्याख्या है तो मानवेतर प्राणियों में नेवला, सुअर, यहाँ तक की सुअर को 'मादरे हिंद' की बेटी बनाने वाला जन–चेतना के सच्चे चितेरे कोई और नहीं नागार्जुन थे । सभी का अपना अस्तित्व होता है, संसार में छोटा या बड़ा का भेद–भाव कैसा ? इनके मन में बुजुर्गों के प्रति भाव–संवेदना कुछ इस तरह है –

'झुकी पीठ को मिला
किसी हथेली का स्पर्ष
तन गई रीढ़ ।'

जब नेवला या मादा सुअर उनकी संवेदना को झकझोर सकती है तो फिर घर में बच्चा बीमार है और गृहिणी फटी दरी पर बैठकर चावल चुन रही है । फिर 'बच्चे की दंतुरित मुस्कान है, जो मृतक में भी डाल देगी जान' ।

अतएव नागार्जुन के साहित्य में जन–चेतना का स्वर जनता नही लोक के सवाल को अकादमिक बहस का विषय नहीं मानते बल्कि उसे अपनी सांसों का हिस्सा मानते है । इनकी रचनाओं में संवेदना और सहानुभूति की व्यथा–कथा है । जो मनुष्य के जिजीविषा और अदम्य मानवीय गुणों से परिपूर्ण है । यथा –

'गोरैया का चूँजा है यह ... चें चे, चूँ, चूँ ने मेरा ध्यान भंग किया । अब में उसकी माँ हूँ, मैं ही उसका बाप हूँ । मैं गोरैया बनकर उसे दूध पिलाता हूँ ...'(बाबा बटेसरनाथ)

उनकी भाषा में मानवीकरण अलंकार हैं । जैसे 'कई दिनों तक चूल्हा रोया' वाली कविता में कुतिया और छिपकलियों की तरह चूल्हा और चक्की मानों सजीव हो उठी हों यथा–

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया, सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गष्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही षिकस्त
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आंखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पांखे कई दिनों के बाद ।"

उपरोक्त पंक्ति से यह स्पष्ट होता है कि साधारण लोगों को जीवन के बारे में उन्हीं की भाषा में, उन्ही के जीवन प्रसंगो का उपयोग करते है । इस कविता का भावार्थ है कि कई दिनों तक चूल्हा जला ही नहीं क्योंकि अन्न नही था । इस तरह चूल्हा, चक्की उदास थी, क्योंकि दाने पिसा ही नहीं गया । अतः चूल्हा चक्की खाली पड़ी थी तो कानी कुतिया आकर उसके पास सो गई, जब घर भर ही भूखा था तो यह सबके दुख में सहभागी थी । यह एक गरीब परिवार है जहाँ की कुतिया भी कानी है, कुत्तों की मार–कांट में बेचारी की एक आँख जाती रही/कमजोर परिवार की कमजोर कुतिया । यहाँ कई दिनों तक छिपकलियों को खाने को कीड़े नहीं मिले क्योंकि बत्ती नहीं जली । इस तरह कविता पाठक को जीवन–संग्राम में ले जाती है । यह अन्न के लिए भूख की लड़ाई है । यह विद्रोह की संवेदना हैं, जो नागार्जुन काव्य का एक मुख्य तत्व है । उन्होंने भारतीय जन के विद्रोह को छोटे से छोटे और बड़े से बड़े विद्रोह को वाणी दी है। कविता में जन–चेतना के प्रतिरोध का स्वर मुखर होता है और वे व्यग्रता से कहते है :–

"यही धुआँ मैं ढूँढ़ रहा था
यही आग में खोज रहा था"

वे सर्वहारा शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करते है, और उत्पीड़को, शोषकों, पूँजीपतियों के काले कारनामों तथा उत्पीड़न तथा शोषण की पोल खोलते है । उनके प्रति घृणा, रोष व आक्रोष प्रकट करते है । सर्वहारा वर्ग में अपने अधिकारी की चेतना जगाते है, उसे अपनी शक्ति तथा क्षमता का एहसास कराते है तथा शोषण या उत्पीड़न के विरूद्ध क्रांति करने का आह्वान अपने रचनाओं के द्वारा करते है । उनकी आर्थिक दूर्दषा तथा उन पर होने वाले अन्याय अत्याचार का वर्णन इस प्रकार से अपने साहित्य में करते है कि पाठकों का हृदय करूणाद्रवित हो उठता है ।

'मुख्य बात यह है कि जो कविता जनता के जीवन–संघर्ष को चित्रित करती है, जनता के दुःख–दर्द को विषय बनाती है, जनता के जीवन को शोषण मुक्त करने के संघर्ष में शामिल है । जो कविता जनता को नए भविष्य का संकेत देती है, वह जन कविता है । जाहिर है कि ऐसी कविता जनता की भाषा, में लिखी जाती है ं ऐसी कविता में मेहनतकष के जीवन–प्रसंगों के दृष्य बिम्ब या बिम्बमाला बन कर आते हैं । यही कारण है नागार्जुन की कविताओं में किसान, खेतिहर मजदूर, रिक्सा, मजदूर, स्कूल–मास्टर, कारखाना–मजदूर, आदि आते रहते है। । अकाल भूख, भुखमरी आदि के दृष्य आते रहते हैं । खेत–झोपड़ी, बाढ, सूखा, बजट, राहत आदि–आदि नागार्जुन की कलम से मानवीय संवेदना व्यक्त करते के नए माध्यम बनते है ''

(खगेंद्र ठाकुर – जन कविता और कविता) पृष्ठ सं०–66

उनके साहित्य में जन–चेतना के विभिन्न पहलुओं जैसे – आम जन के श्रम की महता को ग्रामीण परिवेष में अनुभूतियों के साथ सम्पृक्त, लोक संस्कृति, मस्ती से थिरकने वाले और सजग इन्द्रियाँ में जन–जागरण सा उल्लास औरा सूक्ष्म संवेदना को समझने का प्रयास, जनता की अस्मिता और आत्मगौरव के प्रति सहानुभूति, मुक्ति तथा मानावाधिकार व कर्त्तव्य के रुप में समझने का प्रयास किया जाना चाहिए ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1]. खगेंद्र ठाकुर – 'नागार्जुन का कवि कर्म', प्रकाषन विभाग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2013 पृ०सं०–66

[2]. विश्म्भर 'मानव' रामकिशोर शर्मा– 'आधुनिक कवि'–लोकभारती प्रकाषन, इलाहाबाद, प्र०सं०–2008

[3]. नागार्जुन विषेषांक – परिषद्–पत्रिका (षोध–त्रैमासिक)–सैदपुर, पटना, जनवरी 2019 से मार्च 2019, क्रमांक–224, अंक–4

[4]. आधुनिक हिन्दी कविता (MHD-2) एम.ए. हेतु, अध्याय–4 पृ०सं०–193

[5]. हिन्दी दलित साहित्य – मोहनदास नैमिषराय – साहित्य अकादमी, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2011

[6]. बाबा बटेसरनाथ(उपन्यास) – नागार्जुन, राजकमल प्रकाषन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–1954

RRIJM 2015, All Rights Reserved